International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 887-890

परमार काल में वर्ण व्यवस्था : एक अध्ययन

धर्मबीर
शोधार्थी, इतिहास विभाग, मदवि, रोहतक, हरियाणा, भारत।

सांराश
परमार कालीन समाज गुप्तयुग से चली आ रही परिपातियों से ज्यादा हट कर नहीं था। इसमें वैदिक काल से चली आर ही वर्ण व्यवस्था थी। इसी प्रकार से परमार काल में भी थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ सामाजिक स्थिति विद्यमान थी। समकालीन साहित्य के अनुसार जाति प्रथा में कोई ज्यादा बदलाव नहीं आया था। यह प्राचीन हिन्दू सामाजिक ढांचे के अनुरूप थी। अभी तक तो जाति प्रथा में सांस्कृतिक अन्तर निहित थे। लेकिन अब उसमें व्यावसायिक अन्तर भी स्थान ग्रहण कर गये। अतः इस शोध पत्र में हम परमार काल की सामाजिक व्यवस्था में वर्णाश्रम प्रथा को तात्कालिक साहित्यक तथा अभिलेखीय उल्लेखों के आधार पर जानेंगे।

मुख्य शब्द : राजपूत, वर्णाश्रम, शस्त्रोपजीवि, सम्मोहन विद्या।

प्रस्तावना
परमार कालीन समाज में 'वर्णाश्रम' व्यवस्था के अनुसार चतुवर्ण व्यवस्था थी। जिसके अन्तर्गत समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वप्रथम था।[1] अरब लेखक मसूदी, जो दसवीं शताब्दी में भारत भ्रमण हेतु आया था, ने लिखा है कि भारतीयों द्वारा ब्राह्मणों का अत्यन्त महत्वपूर्ण तरीके से सम्मान होता था तथा वे सर्वोच्च जाति के माने जाते थे।[2] अन्य लेखक अलबेरूनी भी लिखता है कि सारी भारतीय समाज में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति माने जाते थे। वे अन्य जातियों के समान नहीं थे, जिनको नरेश के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करनी पड़ती थी तथा उनके प्रति कर्तव्य निभाने होते थे।[3]

ब्राह्मणों की सांस्कृतिक श्रेष्ठता उच्च जाति तथा अधिकार समकालीन अभिलेखीय साक्ष्यों से भी सर्वथा उजागर होते हैं। आबु के परमार सोमसिंह के 1233 ई. के नाना अभिलेख से पता चलता है कि ब्राह्मणों पर से सभी प्रकार के कर क्षमा कर दिये थे।[4] परमार राजवंशीय अभिलेखों में दान प्राप्त करता ब्राह्मणों के पितामह, पिता व स्वयं के गोत्र, शाखा, परिवार तथ मूल स्थान जहां से वे देशान्तर गमनके मालवा साम्राज्य में आये थे, के उल्लेख मिलते हैं। प्रायः ब्राह्मणों को पण्डित, महापण्डित, उपाध्याय, ठक्कुर श्रोत्रिय, पाठक और भट्ट आदि उपाधियों से पुकारा जाता था। हालांकि अभी तक ये उपाधियां वंशानुगत स्वरूप धारणे नहीं कर पाई थी क्योंकि अभी तक दान प्राप्तकर्ता ब्राह्मण, उसके पिता तथा पितामह की उपाधियां एक समान न होकर भिन्न–भिन्न होती थीं। उदाहरणार्थ, भोपाल के महाकुमार हरिश्चन्द्र के 1214 के ताम्रपत्र में आवस्थिक श्रीधर अग्निहोतृक भारद्वाज का पुत्र निरूपित है पण्डित मधुसुदन आवस्थिक देल्ह का पुत्र था। पण्डित सोमदेव आवस्थिक देल्ह का पुत्र था, जो ठक्कुर विष्णु पण्डित शोण्डल का पुत्र था।

इसी प्रकार जयसिंह, जयवम्रन द्वितीय के माधांता ताम्रपत्र में दीक्षित पद्यनाभ आवस्थिक विद्याधर शर्मा का पुत्र तथा जो चतुर्वेद कमलाधर शर्मा का पौत्र था, पण्डित श्रीकांत शर्मा पंचपाठिन मिश्र उद्धरण शर्मा कापुत्र तथा मिश्रधर्म शर्मा का पौत्र था द्विवेदिन गौवर्धन शर्मा पण्डित विद्यापति शर्मा का पुत्र व चतुर्वेदीन् भुपति शर्मा का पौत्र था।

इस काल में ब्राह्मणों को उनके गोत्रों से जाना जाता था, जैसे – भारद्वाज, कश्यप, चापलीय, गोपाली, वशिष्ठ, वत्स, शाडिल्य, गौत्तम, गर्ग, मार्कण्डेय, पाराशर, दौमेय, कृष्णात्रेय, अद्वह, शौनक, शांकृत्य, कोडिन्य, मुदगल, हरितकुत्स, कौत्स, पराक्सुः, औदल्य, आत्रेय, पवित्र।[5] इनकी विभिन्न शाखाओं के अभिलेखों में उल्लेख प्राप्त होते हैं, जैसे वाजिमाध्यंदिन, सामवेद, आश्वालायन, माध्यंदिन, कौथुम, शाखांयन, वाजसनेय, कठ तथा राणयनी।[6]

ब्राह्मण कभी–कभी उक्त शाखाओं व गोत्रों के साथ विशिष्ट उपाधियां लगाते थें जिससे उनके पद और शिक्षा के विस्तार का पता चलता था। जैसे दीक्षित, क्षेत्रिय, पण्डित, चतुर्वेद, शुक्ल, अग्निहोतृ, त्रिपाठिन, याज्ञिक, द्विवेद, राजन, पाठक आदि ब्राह्मणों को उनके मूल निवास स्थान के नाम से भी पुकारा जाता था, जैसे नागर ब्राह्मण दक्षिणापत्य, श्रीमाली ब्राह्मण आदि–आदि।[7]

इन्हीं विद्वान तथा अत्यन्त गुणी ब्राह्मणों के कारण मालवा राज्य ने एक आदर्श हिन्दू राज्य का पद प्राप्त किया। चालुक्य भीम द्वितीय के उत्कीर्ण लेख जिसकी तिथि 1208 ई. है। निम्नलिखित शब्दों में इस प्रदेश का एक चित्र प्रस्तुत किया। "धनी मनुष्यों की निवास भूमि अवन्ति के जय हो जो अपने अधीश्वरों के शौर्य पृथ्वी की रक्षा करती है। श्रुतियों के अनुसार आचरण करने वाले अपने ब्राह्मणों के शुद्ध और तेजस्वी जीवन द्वारा इसका संस्कार करती है, और अपने राजसीवृत्ति के युवाओं के विलास से उठे हुए सौरभ से इसे प्रफुल्लित करती है।"

इस प्रकार इस काल में जातियों व उपजातियों में वृद्धि होती जा रही थी। यह स्थिति सम्भवतः मुलसलमानों के आक्रमणों के कारण उत्पन्न हुई थी। इन परिस्थितियों के कारण लोगों में आपसी मेल मिलाप तथा स्वतन्त्र भ्रमण में कठिनाई होने लगी थी। अब हिन्दू संस्कृति को पवित्र बनाये रखने की कोशिश की जाने लगी, परन्तु ब्राह्मणों द्वारा हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों में सुधार करने तथा हिन्दू धर्म को सरल बनाने के स्थान पर धार्मिक रीतियों, जन्म तथा रक्त की शुद्धता पर अधिक बल दिया जाने लगा। अन्तर जातीय विवाहों को प्रतिबन्धित कर दिया। अब शुद्र के हाथ का भोजन वर्जित कर दिया गया।[8] ब्राह्मण मुस्लिमों के साथ संबंध को निम्न मानते थे। ऐसी परिस्थितियों के साथ समय व्यतीत होने के साथ–साथ उपजातियों में प्रगुणन होना स्वाभाविक था।

ब्राह्मणों के कर्तव्यों में अध्ययन अध्यापन, दान लेना, यज्ञ करना आदि सम्मिलित थे। ब्राह्मण बालक को पवित्र सुत्र (जनेऊ) धारण

करना तथा निश्चित आयु में शिक्षा ग्रहण करने हेतु गुरू के पास दीक्षित होना आवश्यक था। 16 वर्ष की आयु तक उसकी शिक्षा लगभग पूर्ण हो जाती थी तथा वह जीवन के अगले चरण में प्रवेश करता था।[9] ब्राह्मण अपने–आपको वेदों तथा शास्त्रों के अध्ययन–अध्यापन में समर्पित रखते थे। यह उनके नामों के साथ द्विवेदिन, चतुर्विदिन उपाधियों से ज्ञात होता था। विभिन्न स्थलों पर श्रोत्रिय ब्राह्मणों की पक्तियां विभिन्न प्रकार की धार्मिक क्रियाएं सम्पन्न करते हुए दृष्टिगोचर होती थीं। कुछ स्थलों पर श्रुति, स्मृति, व्याकरण शास्त्र, पुराण इतिहास आदि पर भाषण होते थे।

विद्वान ब्राह्मण दर्शशास्त्र की विभिन्न विधाओं पर गहन अध्ययन करते थे तथा राजसभा में साहित्यिक तथा दार्शनिक वाद–विवादों में भाग लेते थे। कुछ ब्राह्मण सांसारिक दुनिया से विरक्त होकर सन्यासी बन जाते थे। कुछ ब्राह्मण धार्मिक जीवन व्यतीत करने हेतु साम्राज्य में फैले शैव तथा पाशुपत सम्प्रदाय में सम्मिलित हो जाते थे। कुछ ब्राह्मण वंशानुक्रम से फैले शैव तथा पाशुपत सम्प्रदाय में सम्मिलित हो जाते थे। कुछ ब्राह्मण वंशानुक्रम से पुरोहित, राजगुरू तथा राजकीय पुजारी कर्म करते थे। वैसे ब्राह्मण लोग स्मृतियों श्रुतियों के अनुरूप जीवनयापन करने का प्रयत्न करते थे।

ब्राह्मणों में से कम पढ़े–लिखे लोग अपनी आजीविका स्वस्ति वचनों का उच्चारण करके करते थे तथा देवालयों में पुजारी बन जाते थे। स्मृति ग्रन्थों के अनुसार यदि कोई ब्राह्मण अपनी आजीविका परम्परागत व्यवसाय द्वारा नहीं कमा सकता था तो वह क्षत्रिय अथवा वैश्य के व्यवसाय अपना सकता था।[10] इस प्रकार जीवन के सभी क्षेत्र ब्राह्मणों के लिए खुले थे, यद्यपि कुछ विशिष्ठ परिस्थितियों में ही उनको ब्राह्मणेतर व्यवसाय अपनाने की अनुमति थी।[11] कतिपय ब्राह्मणों द्वारा शासन करने के उल्लेख प्राप्त होत हैं। स्वयं परमार राजवंशीय नरेश वशिष्ठ गोत्रिय ब्राह्मण थे इसी प्रकार चाहवान, गुहिल व अनेक शासनकर्ता वंश थे। श्रृंगारमंजरी कथा ग्रंथ में एक ब्राह्मण द्वारा शासन करने का उल्लेख प्राप्त होता है।[12] परमार राजवंशीय नरेशों के अधीन सन्धिविग्रहक तथा दूतक के पदों पर ब्राह्मण नियुक्त थे। महापण्डित विल्हण नरेश विध्यंवर्मन नरेश अर्जुनवर्मन तथ नरेश देवपाल देव का सन्धिविग्रहक था। ठक्कुर विष्णु नरेश सीयक द्वितीय के हरसोला ताम्रपात्रों का दूतक था परमार नरेशों की अनेक प्रशस्तियों के लेखक ब्राह्मण थे। आबु नरेश पूर्णपाल का वसंतगढ़ अभिलेख ब्राह्मण मातृशर्मन द्वारा रचा गया था। अतएव ब्राह्मण लोग अन्य व्यवसायों द्वारा भी धन अर्जित कर सकते थे।

बहुत से ब्राह्मण परिवार दूर–दूर से आकर मालवा में बसे थे। ये ब्राह्मण दूरस्थ स्थानों जैसे हस्तिनापुर, मथुरा, अहिक्षत्र, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, मान्यखेट, मगध गौड़ आदि प्रदेशों से आये थे, तथा मालवा में आकर राजकीय सम्मान तथा भुदान आदि प्राप्त कर सकते थे, ऐसे अनेक अभिलेखीय प्रमाण प्राप्त होते हैं। प्रतीत होता है कि समकालीन कतिपय जैन विद्वानों ने ब्राह्मणों के विशिष्ठ अधिकारों का उपहास किया था। इसका कुछ प्रभाव जैनियों द्वारा निर्वासित क्षेत्रों में ब्राह्मणों की स्थिति पर अवश्य पड़ा होगा। क्योंकि जैन लोग पर्याप्त धन एवं शक्ति सम्पन्न थे। सभी तथ्यों पर विचार करने के बाद यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस युग में ब्राह्मणों ने समाज पर अपना प्रभाव केवल धर्म के आधार पर ही नहीं अपितु अपने ज्ञान एवं चरित्र की श्रेष्ठता के कारण स्थापित किया हुआ था।

परमार कालीन अभिलेखों में ब्राह्मणों के समान क्षत्रियों का उल्लेख कठिनाई से मिलता है। वर्ण धर्म के अनुसार क्षत्रियों का उल्लेख ब्राह्मणों के पश्चात् ही आता है। क्षत्रियों के कर्तव्यों में शूरवीर होना, अपने ऊपर नियंत्रण रखना, जनता की रक्षा के लिए तत्पर रहना, शत्रुओं तथा दुष्टों को दण्ड देना, यज्ञ करना दान देना तथा वेदों का अध्ययन करना आदि आता है।[13] संभवतः परमार अभिलेखों के अन्त में 'वर्मन' शब्द जुड़ा होता था।

क्षत्रिय इस काल में मुख्यतः उनके कुलों के नाम से जाने जाते थे। गोत्र तो उस समय तक व्यवहारिक रूप से समाप्त हो चुके थे। नरेश जयसिंह जयवर्मन द्वितीय के माधांता अभिलेख में चाहमानों को क्षत्रिय वंश के गौत्र का नाम दिया गया है। परन्तु यह उदाहरण एकांकी हैं वस्तुतः अब क्षत्रियों ने अपने पुरोहितों के गोत्रों को अपना लिया था।[14] इसका प्रमुख कारण यह था कि क्षत्रियों में वेदों के सम्बन्धों में अज्ञान बढ़ रहा था। दूसरा कारण यह था कि राजपुत्र अथवा राजपूत मूल रूप से क्षत्रिय जाति के नहीं थे। वे संभवतः किन्हीं अन्य जातियों, कबीलों एवं संस्कृतियों के लोग थे। उनके पास समान रूप से केवल एक ही व्यवसाय था अर्थात् वे सब शस्त्रोपजीवि थे।[15]

क्षत्रियों में से अनेकों के कोई गोत्र नहीं थे तथा जिन कुछ के रहे भी होंगे वे अब हिन्दू समाज में इतने घुलमिल गये थे कि वे अब अपने गोत्रों को बिल्कुल भूल गये थे। ऐसी परिस्थिति में कोई आश्चर्य नहीं की मेधातिथि ने उल्लेख कर दिया है कि गोत्रों एवं परिवारों का भेद केवल ब्राह्मणों तक ही सीमित है।[16] मिताक्षरा ने भी उल्लेख किया है कि क्षत्रियों तथा वैश्यों को अपने पुरोहितों के गोत्र एवं परिवार ग्रहण कर लेने चाहिए क्योंकि उनके स्वयं के गोत्र का कोई उल्लेख नहीं था।[17]

परमार साम्राज्य में शासक, सामन्त अनेक प्रशासनिक अधिकारी तथा सैनिक अधिकारी प्रधानतः राजपूत वंश के थे। ये लोग दानशील आनन्दप्रिय तथा शूरवीर थे तथा ये लोग रणक्षेत्र में प्राण त्याग को अत्यधिक महत्व देते थे तथा शयनकक्ष में मृत्यु को अधर्म मानते थे।

समाज में तीसरी महत्वपूर्ण जाति वैश्य थी। इस काल के स्मृतिकारों ने वैश्यों के कार्य कृषि, पशुपालन, व्यापार वाणिज्य और साहुकारी लिखे हैं।[18] इनमें से प्रथम दो कार्य अर्थात् कृषि तथा पशुपालन समय के साथ–साथ शुद्रों के हाथों में चले गये थे। इस काल में वैश्य अधिकतर जैन समुदाय से थे जो कृषि में हिंसा नहीं करना चाहते थे, इसलिए कृषि कार्यों में इन लोगों की रूचि धीरे–धीरे कम होने लगी। अब वैश्य अधिकतर धन के स्वामी होने लगे। तत्कालीन समाज में वैश्यों की स्थिति उनके पास धन के आधार पर ही निर्धारित होने लगी। साम्राज्य में नगरों का धन एवं वैभव उसमें निवास करने वाले श्रेष्ठियों एवं सामन्तों के पास धन सम्पन्नता के आंका जाने लगा। परमार साम्राजय के अन्तर्गत स्थित श्रीमान, किरातकुप तथा प्रहलादनपुर के समान नगरों की भौतिक स्मृद्धि उनमें निवास करने वाली श्रीमन्तों के कारण थी। समकालीन जैन साहित्य में वैश्य जाति की सामान्य धन सम्पन्नता के सम्बन्ध में अनेक विवरण प्राप्त होते हैं।[19]

श्रृंगारमंजरी कथा में एक व्यापारी के पुत्र के सम्बन्ध में विवरण प्राप्त होता है। वह अनेक कलाओं तथा विज्ञानों में प्रवीण था, जैसे अश्वों द्वारा चालित वाहनों को चलाने की विधि (अश्ववाहन विधि), हाथियों को पकड़ने की विधि (गजायुर्वेद), व्यापार करने की कला (वणिककला), जुए की कला के रहस्य (द्युतरहस्य), वेश्याओं से सहचरी की कला वैशिकोपनिषद, चित्रकला, पत्रच्छेदनकला, पुस्तक प्रभूतिकला अर्थात् पुस्तक आदि के रखरखाव की कला। परन्तु इस प्रकार की स्थिति समस्त वणिकपुत्रों पर लागु नहीं की जा सकती थी। अन्य जातियो के समान वैश्यों में भी वर्ण तथा जाति का प्रभाव विद्यमान था। वैश्य लोग उन सभी का स्वागत करते थे जो व्यापार करते थे। कुछ ऐसे भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। जब वैश्यपुत्र अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़कर अन्य व्यवसाय अपना लेते थे।

सामान्यतः

वैश्य लोग राजसभा में पर्याप्त प्रभाव रखते थे। कुछ तो स्थानीय प्रशासन में अधिकारी नियुक्त हो जाते थे। व्यापारी संघ नगर प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। वैश्यों की धमार्थ और साहित्यक गतिविधियों में भी अच्छी देन थी। वैश्य लोग कुछ मन्दिरों की रखवाली की भी जिम्मेदारी लेते थे। जिसकापता हमें परमार कालीन अभिलेखों से मिलता है।

यह विचार की दसवीं शताब्दी में वैश्यों की गणना शुद्रों में होने लग गई थी, के सम्बन्ध में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। 'समरांगण सुत्रधार' तथा 'मानसार' ग्रन्थों जिनका सम्बन्ध नगर निर्माण से है, इनमें नागरिक समाज में वैश्यों को विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया है। यह स्थान यद्यपि ब्राह्मण तथा क्षत्रिय से निम्न था। परन्तु शुद्रों से निश्चित ही श्रेष्ठ था। 'कृत्यकल्पतरू' ग्रन्थ में लेखक लक्ष्मीधरने वैश्यों को वेद अध्ययन की अनुमति प्रदान की तथा इसी ग्रन्थ में आगे लक्ष्मीधर ने वैश्यों को कुछ वस्तुओं का व्यापार करने की मनाही की है जैसे दूध, मक्खन, नमक, नील, लाख, मुर्तियां, हथियार, विष, शराब, मांस तथा खालें। इन उल्लेखों से यह तथ्य उजागर होता है कि तत्कालीन समाज में वैश्यों की स्थिति शूद्रों से निश्चित ही उच्च थी।[20]

परमार कालीन प्रमाणों में शुद्रों का कोई जिक्र नहीं मिलता। इस वर्ग में निम्न जाति को इंगित किया गया है। जो इनकी जाति की बजाय उनके व्यवसाय से जाने जाते थे। स्मृतियों ने शुद्रों का एक वर्ण के रूप में उल्लेख कर दिया है। परन्तु वास्तव में ये लोग विभिन्न जातियों तथा कबीलों में विभाजित थे। इन लोगों को आर्यों में सम्मिलित नहीं किया गया था। इसी कारण इन लोगों को द्विजाति की उच्च स्थिति प्राप्त नहीं हो सकी। वास्तव में शुद्रों में इतनी अधिक जातियां मिश्रित हो गई थी कि इनको तीनों उच्च जातियों में नहीं गिना जा सकता था। इनमें बहुसंख्यक खेतीहर कार्यकर्त्ता, किसान एवं दस्तकारी के धन्धों में संलग्न ऐसे व्यक्ति सम्मिलित थे जिनको अत्यंज व मलेच्छ नहीं कहा जा सकता था।[21] अमरकोष के अनुसार भी उक्त जातियां ही थीं।

पुराणों में शुद्रों की निम्नलिखित जातियों का उल्लेख आया है जैसे शिल्पी, नर्तक, बढई, कुम्हार, चित्रक, सुत्रक, धोबी, जुलाहा, तेली, सुनार, कृषकजन, लुहार, शक्कर बनाने वाले, फूलमाना बनाने वाले आदि थे। इनके अतिरिक्त ज्योतिष, इन्द्रजाल विद्या एवं सम्मोहन विद्या में प्रवीण लोगों के उल्लेख भी हैं।

ये लोग यद्यपि धार्मिक रूप से अयोग्य माने जाते थे तथा दान प्राप्त करने के योग्य भी नहीं माने जाते थे, परन्तु अन्य अनेक कारणों से इस काल में इनकी स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ गया था।

कृषि दस्तकारी तथ पशुपालन अभी भी शुद्रों के अधिकार क्षेत्र में आ जाते थे, परन्तु आर्थिक रूप से ये सारे समाज के महत्त्वपूर्ण अंग बन गये थे। वस्तुतः यही लोग सच्चे अर्थों में वैश्य कहलाने के अधिकारी थे। अतएव उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होने से उनकी सामाजिक स्थिति में भी परिवर्तन होने लग गए। जैन तथा शैव धर्मों ने शुद्रों का आत्मीयता से स्वागत किया तो इन लोगों के सम्मान में वृद्धि होने लगी।

इस नई परिस्थिति की झलक नवीं शताब्दी में मेधातिथि के टिप्पणीकारों में साफ दिखाई देती है,जब वह शुद्र को निजि सम्पत्ति का अधिकार, तीनों उच्च वर्णों की सेवा से मुक्ति, वैदिक मन्त्रों के बगैर संस्कारों का सम्पादन आदि के करवाने का उल्लेख करता है। इन जातियों के सामाजिक एवं आर्थिक कार्य उनके संघों के माध्यम से, जो श्रेणी भी कहे जाते थे के माध्यम से क्रियान्वित होते थे।[22]

तत्कालीन परमार साम्राज्य में अनेक ऐसी जातियां भी विद्यमान थी। जिनकी स्थिति जाति पाति व्यवस्था में निश्चित नहीं थी। याज्ञवल्कय स्मृति में कायस्थों का लेखकों एवं गणकों के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है। ये लोग इन काल में एक जाति के रूप में संगठित हो चुके थे। कायस्थ अब न्यायालय, सामान्य प्रशासन, लेखा–जोखा, लेखाकार्य तथा राज्य के विभिन्न भागों से संबंधित होने लगे थे। पतिपय परमार राजवंशीय अभिलेख कायस्थों के द्वारा रचे गये थे। नरेश सीयक द्वितीय के सवत् 1005 तदनुसार 948 ई. के दोनों ताम्र पत्र अभिलेख कायस्थ गुणधर द्वारा रचे गये थे।[23]

मालवा के परमारों के विक्टोरीया हाल उदयपुर अभिलेख में रूद्रादित्य तथा उसके पौत्र महिपति को कायस्थ कुंजर कहा गया है।[24] श्रृंगारमंजरी कथा में कायस्थों के उल्लेख प्रशसायुक्त न होकर कुछ निन्दायुक्त है। बाद के युग के अनेक राजकीय अधिकारियों के समान तत्कालीन कुछ कायस्थ अधिकारी भी भ्रष्टाचारी तथा बेईमान प्रशासक थे। सम्भव है कि इन उल्लेखों में शायद कुछ व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा मिश्रित रही हो।

परमार कालीन समाज में सबसे अन्तिम बिन्दु पर अन्त्यजों को रखा गया था। क्योंकि इनका कार्य अपनी प्रकृति में अत्यन्त निकृष्ट अथवा मूक पशुओं के प्रति निर्दयता का भाव लिये हुए था। ये दो श्रेणियों में विभाजित किये जा सकते थे। प्रथम श्रेणी में किरात, बर्बर तथा भील आते थे जो वनों में निवास करते थे। सभी वन शबर जाति से परिपूर्ण थे। इनकी नासिका चपटी, गालों की हड्डी उभरी हुई, ठोढी नुकीली तथा कान छोटे होते थे। उनकी आखें लाल होती थीं। ये प्रायः समूहों में घूमते थे। इनके पास जानवरों के सींग होते थे जिनसे वे बड़ी उच्ची ध्वनि करते थे। इनकी ध्वनियों से यात्रीगण तथा जंगली जानवर भी भयभीत हो जाते थे। शबर लोग वनों में पूरी स्वतन्त्रता के साथ घूमते थे,, परन्तु समाज में ये लोग सबसे निम्न माने जाते थे। 'कुवलयमाला' में चाण्डालों, भीलों, डोमो, शिकारियों तथा मत्स्यबंधों को शबर जाति का निरूपित किया है। ये ऐसे व्यक्ति थे जिनका कोई धर्म, अर्थ नहीं था तथा ये मलेच्छों के समान थे।[25]

दूसरी श्रेणी के लोगों में अन्त्यज आते थे। इनका उल्लेख अलबरूनी ने इनके धन्धों के आधार पर किया। इनके धन्धों में मदारी, टोकरी, बनाने वाले, ढाल बनाने वाले, केवट, मछली पकड़ने वाले, जंगली पशुओं व पक्षियों का शिकार करने वाले, कपड़ा बुनने वाले, कपड़ा साफ करे वाले, मोची, हाड़ी, डोम तथा वधिक आदि थे। इनमें से प्रथम छः कुछ उच्च स्थिति के थे। जुलाहे कपड़ा साफ करने वाले, मोची एक ही श्रेणी के थे। ये लोग आपस में रोटी–बेटी का व्यवहार रखते थे। परन्तु अन्तिम चार समाज से पूर्णतः बहिष्कृत थे।[26] अन्य श्रेणी से इनका कोई व्यवहार नहीं था। हांडी, डोम, चण्डाल और बधिकों की अपनी श्रेणियां नहीं थी। ये गांव में झाडू लगाते, चमड़ा साफ करते, सांप पालते, दण्डित व्यक्तियों को मारते थे, बधिक अपराधियों को प्राणदण्ड देते थे। इस प्रकार इस समय तक अन्त्यजो में भी अनेक श्रेणियां बन गई थीं। जिनमें कुछ उच्च थे परन्तु अन्य पूर्णतः तिरस्कृत थे।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि परमार कालीन समाज में भी वर्ण व्यवस्था कायम थी। वर्ण व्यवस्था के अन्दर जातियों का प्रगुणन हो रहा था। हालांकि ब्राह्मणों का समाज में सर्वोच्च स्थान था तथा दूसरे स्थान पर क्षत्रिय आते थे। इस काल में वैश्य की आर्थिक स्थिति और भी मजबूत हो गई थी। किसी भी नगर के आर्थिक वैभव का अंदाजा वहां रहने वाले धनाढ्य लोगों से लगाया जाता था। चुंकि धनाढ्य इस काल में वैश्य थे। इस काल में शुद्रों की स्थिति में काफी सुधार हो गया। स्मृतिकार के टिप्पणी कारों के अनुसार उनको सम्पत्ति का अधिकार दिया गया था। अंत में हम

कह सकते हैं कि इस काल में वर्ण व्यवस्था प्राचीन ढांचे पर परिवर्तनों के साथ स्थापित थी।

संदर्भ

1. मजुमदार, बी.पी., सोसियो इक्नामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया', कलकत्ता, 1960, पृ.सं. 79
2. इलिय एण्ड डाऊसन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', भाग–1, ओ.यू.पी., पुनः मुद्रण 1968, पृ.सं. 19
3. 'किताबुल हिन्द', सम्पादन सचऊ, भाग–1, लन्दन, 1914, पृ.सं. 101
4. एपिग्राफिया इण्डिया, जिल्द–8, पृ.सं. 211
5. एपि.इण्डि., जिल्द–24, पृ.सं. 233–34
6. गांगुली, डी.सी., परमार राजवंश का इतिहास, लखनऊ, 1971, पृ.सं. 174
7. भाटिया, प्रतिपाल, पूर्वोक्त, पृ.सं. 275
8. काणे, पी.वी., 'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्रा', भाग–3, पूना, 1930–53, पृ.सं. 926–968
9. श्रृंगारमंजरी कथा, भोज, सम्पादन डॉ. कु.के. मुंशी, मुम्बई, 1985, पृ.सं. 19
10. मनुस्मृति, भाग–10, श्लोक–81, सम्पादन गंगानाथ झा, कलकत्ता, 1934
11. कृत्यकल्पतरू, लक्ष्मीधर, सम्पादन, रंगास्वामी, आयंगर, बड़ौदा, पृ.सं. 72
12. श्रृंगारमंजरी कथा, पृ.सं. 55, भोज सम्पादन, डॉ. कु.के. मुन्शी, बम्बई, 1958
13. पाराशर स्मृति, सायण माध्वाचार्य की टीका सहित, सम्पादन, वामन शास्त्री इस्लामपुरकर, बम्बई, 1893–1906, भाग–1, श्लोक 64
14. ओझा, जी.एच., 'राजपूताने का प्राचीन इतिहास;, जोधपुर, 2009, पृ.सं. 253–54
15. शर्मा, दशरथ, 'अर्ली चौहान डायनेस्टीज', दिल्ली, 1959, पृ.सं. 242–44
16. मनुस्मृति, मेघातिथि की टीका सहित, सम्पादन, गंगानाथ झा, कलकत्ता, 1934, भाग–3, पृ.सं. 5
17. मिताक्षरा, एन.शास्त्री द्वारा सम्पादित, भाग–1, बनारस, 1908, पृ.सं. 53
18. मनुस्मृति, भाग–9, श्लोक–326–333
19. मित्तल, ए.सी., 'परमार साम्राज्य के अभिलेख', अहमदाबाद, 1979, पृ.सं 66
20. कृत्यकल्पतरू, गृहस्थ काण्ड, पृ.सं. 258
21. मनुस्मृति, मेधातिति, भाग–6, श्लोक 97, सम्पादन गंगानाथ झा, कलकत्ता, 1934
22. मजुमदार, आर.सी., 'कार्पोरेट लाइफ इन एंशट इण्डिया', अध्याय–1, कलकत्ता, 1920
23. एपि.इण्डि., जिल्द–9, पृ.सं. 243
24. 'आर्कियोलॉजी सर्वे ऑफ इण्डिया', 1936–37, पृ.सं. 124
25. कुवलयमाला, उद्योतन सुरी, सम्पादन, ए.एन. उपाध्ये, बम्बई,1959, पृ.सं. 40
26. 'अलबैरूनी का भारत विवरण', सचऊ, भाग–1, लंदन, 1914, पृ.सं. 101